अक्षरौटी

• वर्ष १ • अंक १ • जुलाई–सितम्बर २००७

मूल्य १५ रुपए

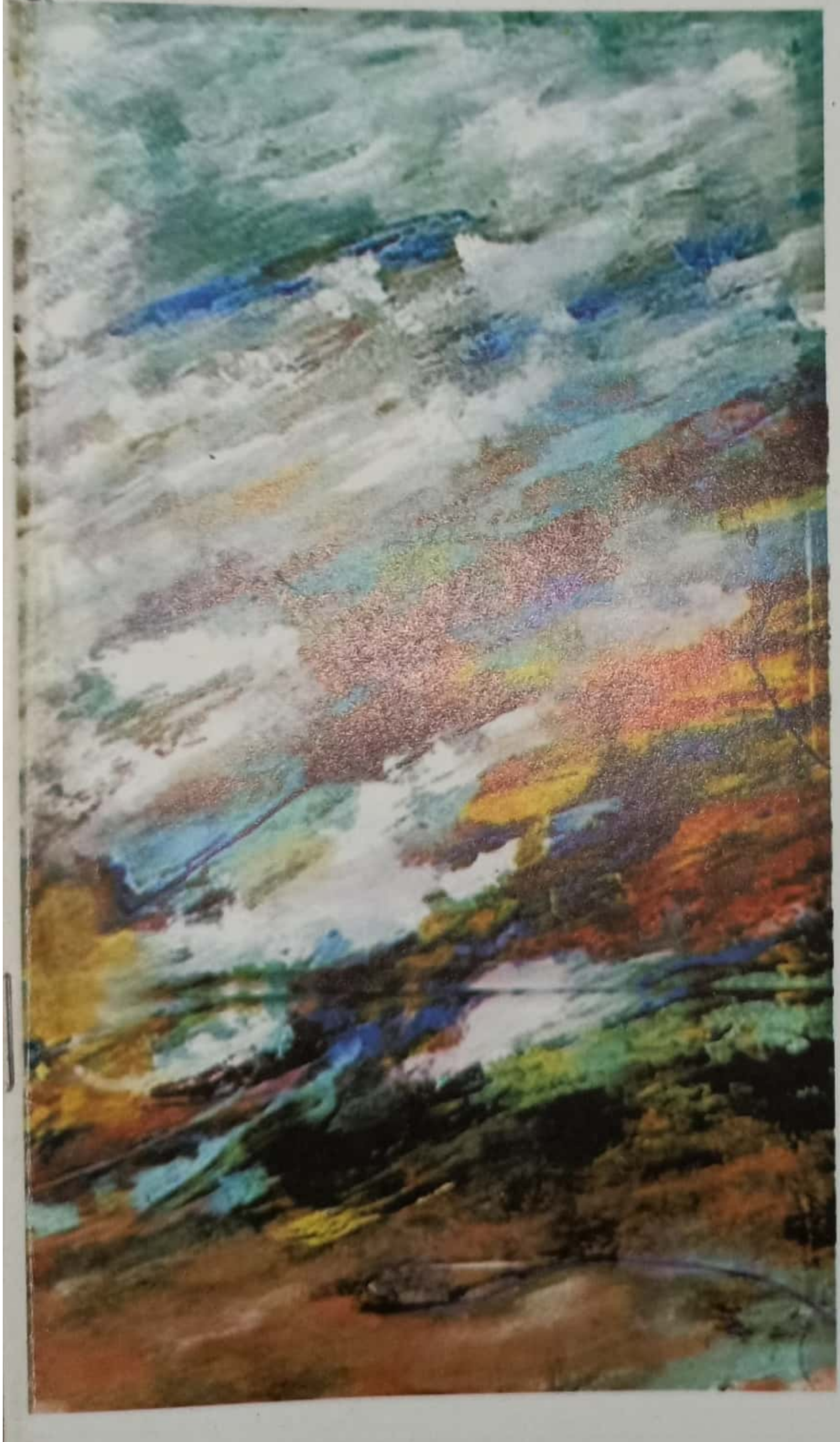

प्रवेशांक

Scanned with CamScanner

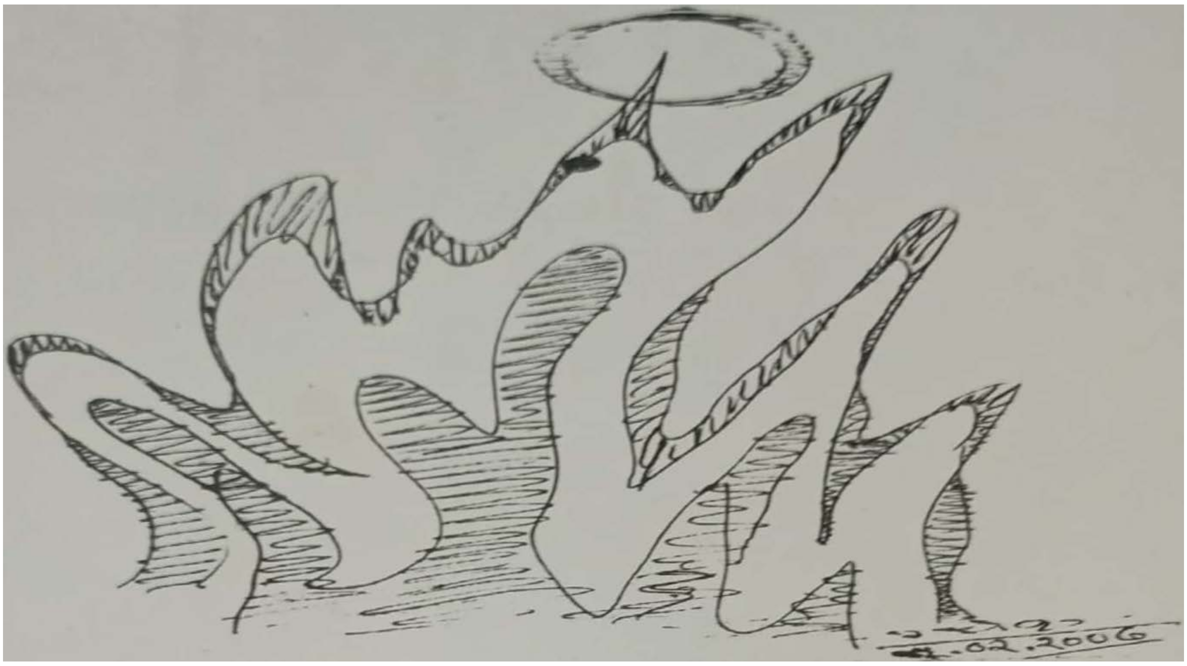

पाठकों/रचनाकारों से

- अक्षरौटी किसी विचारधारा विशेष, समूह विशेष विधा विशेष की न होकर साहित्य, संस्कृति व भाषा की सार्वजनिक पत्रिका है, अतः साहित्य संस्कृति व भाषा से जुड़े प्रत्येक संदर्भ, विषय व विधा पर आप सभी की रचनाएँ सादर आमन्त्रित हैं

- रचना मौलिक व अप्रकाशित हो तथा सुस्पष्ट लिखित अथवा टंकित हो। कृपया अपना संक्षिप्त परिचय भी दें।

- रचना स्वीकृति/अस्वीकृति की सूचना साधारण डाक से दो माह के भीतर भेज दी जाएगी। रचना वापसी संभव नहीं है अतः रचना की एक प्रति अपने पास सुरक्षित रख लें।

- आपके सुझाव व प्रतिक्रियाएँ हमारे लिए उपयोगी सिद्ध होंगी।

<u>हमारा पता</u>

संपादक, अक्षरौटी

431, डाक-तार कॉलोनी,

रामकृष्ण पुरम् सैक्टर-6,

नई दिल्ली-22

Scanned with CamScanner

अक्षरौटी

प्रवेशांक

वर्ष - 1

अंक - 1

जुलाई-सितम्बर, 2007

इस अंक में

2 संपादकीय

26 इस अंक का आवरण (विचार)

लेख

4 हिन्दी कविता के सामने सवाल : *प्रफुल्ल कोलाख्यान*

23 विद्यापति की पदावली में मिथिला का समाज : *प्रभात कुमार मिश्र*

कथा दीर्घा

8 अविश्वास एक यातना है : *विपिन कुमार शर्मा*

15 फिर वहीं : *अभय कुमार दूबे*

35 प्रतिकार : प्रीति जायसवाल

पंचवटी

27-34 जितेन्द्र श्रीवास्तव, एस.एस.निरुपम, ऋतेश सुरभि, रथीश कुमार शर्मा और रूपेश शुक्ल की कविताएँ

14 स्मिति मणि की कविता

48 शालिनी कपूर की कविता

माटी की ओर

19 *भिखारी ठाकुर* का भोजपुरी नाटक

मैं जिसे ओढ़ता बिछाता हूँ

39 *जितेन्द्र परवाज़ और जयकृष्ण राय तुषार की ग़ज़लें*

प्रतिमान

40 *सुब्रमण्यम भारती* की कविताएँ

रूबरू

41 हम भी हैं यहाँ : एक साहित्यप्रेमी पुस्तक विक्रेता से *धर्मेन्द्र कुमार* की बातचीत

14 बज़्म

सिर-फुटव्वल

43 सम्पूर्ण भ्रष्टसत्ता सम्पन्न राज्य का स्वप्न : *चिराग जैन*

निकष

46 विरासत की पड़ताल : *निरंजन सहाय*

आवरण : गोविन्द प्रसाद

प्रस्तुत अंक का चित्रांकन : राजेश कुमार

संपादक

नीलाम्बुज सिंह

घनश्यामं कुमार 'देवांश'

पंकज बोस

कला संपादक

चिराग जैन

प्रबन्ध

रामकुमार झा

- अक्षरौटी से जुड़े सभी पद अवैतनिक हैं।
- लेखकों द्वारा व्यक्त विचार उनके अपने हैं।
- अक्षरौटी से संबंधित सभी विवादों का न्याय क्षेत्र दिल्ली होगा।
- सम्पादकीय/प्रकाशकीय पताः- अक्षरौटी, 431, डाक-तार कॉलोनी, रामकृष्ण पुरम् सैक्टर-6, नई दिल्ली-22
- दूरभाषः-9873988428/9811085145
- ई-मेलः- akshrauti@gmail.com
- प्रसार व्यवस्थापकः- हिम्मत सिंह नेगी

- इस अंक का मूल्यः 15 रुपए
- वार्षिक शुल्क (व्यक्तिगत)- 60 रुपए
(संस्थागत)- 100 रुपए
- भुगतान राशि केवल नकद/ मनीऑर्डर/ चैक/ डीडी द्वारा 'अक्षरौटी' के नाम से ही भेजें।
- प्रकाशक/मुद्रक- घनश्याम कुमार 'देवांश' द्वारा 431 डाक-तार कॉलोनी, रामकृष्ण पुरम् सैक्टर-6, नई दिल्ली-22 से प्रकाशित एवं स्वास्तिक ऑफसेट प्रेस, एम-120 (पुराने जैन मन्दिर के पास) नवीन शाहदरा, नई दिल्ली से मुद्रित।

Scanned with CamScanner

अक्षरौटी; अभिव्यक्ति के तरीक़े, माध्यम और उपाय!

मित्रों! स्वतंत्र अभिव्यक्ति पर आज के असहिष्णु समय के असहिष्णु लोगों द्वारा तमाम बाधाएँ खड़ी की जा रही हैं। ऐसे समय में किसी भी नई अभिव्यक्ति का होना खुद एक जिरह है। मुक्तिबोध के शब्दों में अब हमें अभिव्यक्ति के ख़तरे उठाने ही पड़ेंगे। ज़ाहिर है, कुछ 'मठ' और 'गढ़' इससे अवश्य प्रभावित होंगे। स्वच्छंद पूँजी के गर्भ से उपजी तमाम 'साहित्यिक' और 'सांस्कृतिक' गतिविधियाँ हमारे प्रबुद्ध पाठकों से छिपी नहीं हैं। यहां हम कोई दावा लेकर तो प्रस्तुत नहीं हुए लेकिन हम अपने पाठकों को ये विश्वास ज़रूर दिलाएँगे कि अंक पढ़कर आप 'ठगा-सा' महसूस नहीं करेंगे।

बहरहाल, पत्रिका कोई भी हो वह विवाद नहीं पैदा करती, महज जनहित में एक 'वाद' दायर करती है। उस वाद के आलोक में आगे क्या बहस होगी, अमृतकलश की प्राप्ति होगी या कि हालाहल के ज्वार उमड़ेंगे, यह तय करने वाले तो पाठक ही हो सकते हैं। लेखक, आलोचक और प्रकाशक के अतिरिक्त साहित्य में 'पाठक' के रूप में चौथे वर्ग की भूमिका कहने को तो बहुत सशक्त है (चूंकि बाज़ार ही वही है) किन्तु इधर साहित्य के इस चौथे खंभे का व्यक्तित्व कमजोर होता जान पड़ता है। स्तरीय साहित्य व पत्र-पत्रिकाओं की घटती प्रसार-संख्या इस तथ्य की पुष्टि करती है। क्या हमने कभी सोचा कि पाठक की प्रतिक्रिया महज 'प्रतिक्रिया' के कॉलम में छप जाने भर से पूरी नहीं हो जाती, बल्कि वह तो बदलाव की गुहार की एक ज़बरदस्त खदबदाहट होती है, सो उसकी सम्मति लेते हुए हमें बदलावों की ओर भी किन्चित तो खिसकना ही चाहिए। किन्तु धारणा कुछ ऐसी है कि पाठक समझदार नहीं हो सकता (गो कि समझदार तो सिर्फ़ आलोचक ही हो सकता है) अथवा वह किसी कहानी, कविता या लेख का संतुलित मूल्यांकन नहीं कर सकता। क्या पाठक की यह प्रतिक्रिया कि 'रचना दिल को छू गई' से अधिक पवित्र और ईमानदार आलोचना सकारात्मक रूप से हो सकती है? इससे सहमत न होने वालों ने क्या कभी इस कथन की विनाशकता को समझने की कोशिश की, जहाँ एक अच्छे पाठक की प्रतिक्रिया यह हो कि 'रचना समझ में ही नहीं आई'। लोगों ने शायद इस मर्म को प्रशंसा के उल्टे अर्थ में लेना शुरू कर दिया है, जैसे कि रचना गूढ़ होने के कारण इतनी अलौकिक व अद्वितीय बन पड़ी है कि उसके लिए 'दिव्य दृष्टि' की क्षमता वाले पाठकों की मौजूदगी जरुरी है। दूसरी ओर इन चीजों के बीच साहित्य की लोकप्रियता उतरकर किस रसातल में समा रही है यदि हम इसके ईमानदार चिन्तन की तरफ़ उन्मुख नहीं हो सकते, तो सम्भवतः अपनी भाषा वा साहित्य के प्रति भी ईमानदार नहीं हो सकते।

साहित्य की जड़ों के अवलोकन में और आगे बढ़ें तो उन लोगों पर भी बात करनी पड़ेगी जो न लेखक हैं, न प्रकाशक हैं, न आलोचक हैं और न ही ठीक-ठीक पाठक ही हैं। यह वह वर्ग है जो साहित्य को आम पाठकों तक पहुँचाता है। इनमें क्षेत्रीय हॉकर से लेकर पुस्तक-विक्रेता तक सभी शामिल हैं। हमारी कोशिश रहेगी कि साहित्य के प्रति उदासीन रहने वाले इन लोगों के बारे में 'कुछ बातें' अपने आगामी अंकों में भी जारी रख सकें।

यूँ तो दिल्ली राजधानी है और साहित्य के भी गढ़ के रूप में जानी जाती है। लेकिन दिक्कत यही है कि इन गढ़ों की किलेबन्दी बड़ी मजबूत है। विचार ही नहीं साहित्य का मूर्त रूप पुस्तकें व पत्र-पत्रिकाएँ भी सीमित जगहों पर ही पाई जाती हैं। बनारस, जयपुर, इलाहाबाद और आगरा जैसे पुराने केन्द्रों पर फिर भी आज साहित्य सुलभ है। दिल्ली में भी इसे और सुलभ बनाने का प्रयास करना होगा। कॉफ़ी हाऊस की अभिजात्य चकाचौंध को चट्टी-चौराहों के 'भदेस' से भी मुख़ातिब होना चाहिए। लब्बोलुबाब यह है कि ऐसे तमाम केन्द्र दिल्ली में निर्मित करने की आवश्यकता है जहाँ हिन्दी साँस ले सके।

उपेक्षाओं पर प्रकाश डालने के बहाने एक बात और। हिन्दी साहित्य के भव्य गूढ़ दरबार में इन दिनों बाल साहित्य को सुनियोजित तौर पर हाशिए पर धकेला जा रहा है (अनजाने में ही सही)। यह हिन्दी साहित्य की आगामी पीढ़ी तैयार करने के प्रति हमारी गम्भीर और भीषण लापरवाही कही जा सकती है। हमें स्पष्ट तौर पर अपने वर्तमान

ही नहीं भविष्य के प्रति भी ईमानदार होना पड़ेगा। इस सन्दर्भ में हम अपने पाठकों से कहना चाहेंगे कि 'अक्षरौटी' अपने आगामी अंक से बाल-साहित्य के प्रकाशन एवं उस पर आधारित विचार-विमर्श पर स्थायी रूप से पृष्ठ निर्धारित करने के लिए कटिबद्ध है। कुल मिलाकर लम्बे समय के अपने प्रयासों को आप सभी तक सफलतापूर्वक पहुँचाने के साथ ही अक्षरौटी परिवार एक उत्साह व तृप्ति का अनुभव कर रहा है। साहित्य में युवाओं की भागीदारी की कमी को महसूस करने वाले लोगों को यह बताते हुए हमें खुशी हो रही है कि अक्षरौटी परिवार के सभी सदस्य युवा हैं। ऐसे प्रयासों को तो तुलसी बाबा भी आशान्वित करते हैं :-

छमिहहिं सज्जन मोरि ढिठाई।
सुनिहहिं बाल-बचन मन लाई

लेखकों, आलोचकों एवं पाठकों की रचनाओं, प्रतिक्रियाओं एवं सुझावों का हमें बेसब्री से इन्तज़ार रहेगा...

-सम्पादक मंडल

हिन्दी कविता के सामने सवाल

• प्रफुल्ल कोलाख्यान

हिन्दी कविता के सामने कई तरह के सवाल हैं, आरोप भी। गंभीर होने के बावजूद अंतरबद्धताओं, अंतर्साक्ष्यों और उपयुक्त विश्लेषणों के अभाव में ये सवाल और आरोप तदर्थ बनकर रह जाते हैं। सवालों का तदर्थ आचरण जीवन को भी क्षतिग्रस्त करता है और साहित्य को भी। कहना न होगा कि सवालों का तदर्थ आचरण, तदर्थ विचार या विचारहीनता की ओर हाँक ले जाता है। एक दूसरा पक्ष भी है, और वह प्रशंसाओं का है। हिंदी कविता प्रशंसाओं के बोझ से भी कम आक्रांत नहीं है। वर्द्धित प्रशंसा कई बार ज़रूरी सवालों से मुँह चुराकर निकल जाने का राजपथ बनाती है। इसमें तत्काल कोई ख़तरा नहीं होता है। तात्कालिक रूप से ख़तरा भले न हो लेकिन आगे चलकर इसकी भारी कीमत चुकानी ही पड़ती है।

वर्गबोध का लोप और मध्यवर्गीय चेतना

कहते हैं कि शेर अपना शिकार ख़ुद करता है। इसी तर्ज़ पर कहा जा सकता है कि 'आदमी' अपना काम ख़ुद करता है। अपना काम खुद करने से परहेज 'आदमी' होने की संभावनाओं में छीजन पैदा करता है। आदमी को 'आदमी' होना आसान नहीं, इसके लिए संघर्ष करना पड़ता है- *"बस कि दुश्वार है हर काम का आसां होना, आदमी को भी मयस्सर नहीं इन्सां होना"*। मनुष्य ने बहुत संघर्ष किया है। उसके संघर्ष का उद्देश्य जीवन में संघर्ष और जोखिम को कम करना भी रहा है। न्यूनतम परिश्रम के आधार पर अधिकतम मनोरम को हासिल करना उसके उद्यम का सार है। इस न्यूनतम परिश्रम की वृत्ति ने उसमें मशीन के साथ ही आदमी – अर्थात् 'दूसरे' – के श्रम और शोषण पर आश्रित होने की प्रवृत्ति को भी जन्म दिया है। जिसके पास जितनी पूँजी होती है, धन होता है उसके पास दूसरे के श्रम पर आश्रित होने की भी उतनी ही सुविधा होती है। श्रम, पूँजी और धन के आधार पर वर्ग बनता है। मध्यवर्ग के पास पूँजी तो कम ही होती है, श्रम और धन होता है। मध्यवर्ग श्रम और धन के रिश्ते को भी जानता है। इधर मध्यवर्ग के लिए पूँजी से जुड़ने के अवसर बढ़े हैं। जिनके पास धन है उनमें बिना किसी श्रम के अर्थात् 'अनायास' हासिल करने की लालसा भी बढ़ी है। 'अनायास' हासिल करने की वृत्ति शोषण को न सिर्फ़ वैध बनाती है, बल्कि उसे जीवन-दर्शन का भी दर्जा प्रदान करती है। समाज के सम्पन्न वर्ग के चरित्र का असर सभी वर्गों पर पड़ता है, मध्यवर्ग पर कुछ ज़्यादा पड़ता है। साहित्य संस्कृति-कला के सृजन-क्षेत्र में उच्च-मध्यवर्ग ही सर्वाधिक सक्रिय रहता आया है; आज की हिन्दी कविता भी उच्च-मध्यवर्गीय मनोभावों, मनोरथों और आकांक्षाओं से जुड़ी हुई है। आज सभी वर्गों के जीवन में अनायास हासिल करने की आकांक्षा, पहले की अपेक्षा अधिक बलवती हो उठी है। उच्च और उच्च-मध्यवर्ग में यह आकांक्षा ख़तरनाक़ हद तक बढ़ी है। किसी चीज के अनायास – लगाव, स्वप्न और संघर्ष के बिना – हासिल हो जाने का अपना मज़ा है। ऐसे में 'वास्तव' का महत्व घटता है और 'आभास' का बढ़ता है – 'वास्तव' से अधिक 'आभास' में मज़ा आता है। हमारे समय का मुहावरा है मज़ा। मज़ा हमें परिचालित करता है। साहित्य मे भी इस 'अनायास' का दबाव बढ़ा है, आभास की स्वीकृति बढ़ी है। नामवर जी ने सन् 1963 में ही इस प्रवृत्ति को रेखांकित करते हुए कहा था- "जिसे आज 'काव्याभास' कहा जा रहा है, वह अधिकांशतः 'अनायास लेखन' है। कविता में महत्वबोध का क्षय अनिवार्यतः 'अनायास लेखन' की ओर ले जाता है। 'अनायास लेखन' अंततः 'अनायास ग्रहण' को प्रश्रय देता है और इस प्रकार आगे चलकर दायरा पूरा हो जाता है। अनायास लिखने के साथ अनायास पढ़ने की क्रिया अभिन्न रूप से जुड़ी हुई है। कौन कारण है और कौन कार्य – कहना कठिन है। लेकिन इतना निश्चित है कि आज 'अनायास ग्रहण' की क्रिया समाज में व्यापक रूप से फैल रही है : अधिकांश लोग आज